शरीर स्वास्थ्य

स्वास्थय के लिए हितकर-अहितकर

प्राचीन काल में भगवान पुनर्वसु आत्रेय ने मनुष्यों के लिए स्वभाव से ही हितकर व अहितकर बातों का वर्णन करते हुए भारद्वाज, हिरण्याक्ष, कांकायन आदि महर्षियों से कहाः

हितकर भाव

आरोग्यकर भावों में समय पर भोजन, सुखपूर्वक पचनेवालों में एक समय भोजन, आयुवर्धन में ब्रह्मचर्य पालन, शरीर की पुष्टि में मन की शान्ति, निद्रा लाने वालों में शरीर का पुष्ट होना तथा भैंस का दूध, थकावट दूर करने में स्नान व शरीर में दृढ़ता उत्पन्न करने वालों में व्यायाम सर्वश्रेष्ठ है ।

वात और पित्त को शांत करने वालों में घी, कफ व पित्त को शांत करने वालों में शहद तथा वात और कफ को शांत करने में तिल का तेल श्रेष्ठ है ।

वायुशामक व बलवर्धक पदार्थों में बला, जठराग्नि को प्रदीप्त कर पेट की वायु को शांत करने वालों में पीपरामूल, दोषों को बाहर निकालने वाले, अग्निदीपक व वायुनिस्सारक पदार्थों में हींग, कृमिनाशकों में वायविडंग, मूत्रविकारों में गोखरू, दाह दूर करने वालों में चंदन का लेप, संग्रहणी व अर्श (बवासीर) को शांत करने में प्रतिदिन तक्र (मट्ठा) सेवन सर्वश्रेष्ठ है ।

अहितकर भाव

रोग उत्पादक कारणों में मल-मूत्र आदि के वेगों को रोकना, आयु घटाने में अति मैथुन, जीवनशक्ति घटाने वालों में बल से अधिक कार्य करना, बुद्धि स्मृति व धैर्य को नष्ट करने में अजीर्ण भोजन (पहले सेवन किये हुए आहार के ठीक से पचने से पूर्व ही पुनः अन्न सेवन करना), आम दोष उत्पन्न करने में अधिक भोजन तथा रोगों को बढ़ाने वाले कारणों में विषाद (दुःख) प्रधान है ।

शरीर को सुखा देने वालों में शोक, पुंस्त्वशक्ति नष्ट करने वालों में क्षार, शरीर के स्रोतों में अवरोध उत्पन्न करने वाले पदार्थों में मंदक दही (पूर्ण रूप से न जमा हुआ दही) तथा वायु उत्पन्न करने वालों में जामुन मुख्यतम है ।

स्वास्थ्यनाशक काल में शरद् ऋतु, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक जल में वर्षा ऋतु की नदी का जल, वायु में पश्चिम दिशा की हवा, ग्रीष्म ऋतु की धूप व भूमि में आनूप देश (जहाँ वृक्ष और वर्षा अधिक हो, धूप कम हो, क्वचित सूर्य-दर्शन भी दुर्लभ हों) मुख्यतम हैं ।

स्वास्थ्य व दीर्घायुष्य की कामना करने वाले व्यक्ति को चाहिए कि हितकर पदार्थों के सेवन के साथ अहितकर पदार्थों का त्याग करे ।

(चरक संहिता, सूत्रस्थानम्, यज्जःपुरूषीयाध्याय 25)

सुलभ प्रसव के लिएः मूलबंध

सगर्भावस्था में प्रसवकाल तक मूलबंध का नियमित अभ्यास करने से प्रसव सुलभता से हो जाता है। मूलबंध माना गुदा (मलद्वार) को सिकोड़ कर रखना जैसे घोड़ा संकोचन करता है। इससे योनि की पेशियों में लचीलापन बना रहता है, जिससे पीड़ारहित प्रसव में सहायता मिलती है। प्रसूति के बाद भी माताओं को मूलबंध एवं अश्विनी मुद्रा का अभ्यास करना चाहिए। अश्विनी मुद्रा अर्थात् जैसे घोड़ा लीद छोड़ते समय गुदा का आकुंचन-प्रसरण करता है, वैसे गुदाद्वार का आकुंचन-प्रसरण करना। लेटे-लेटे 50-60 बार यह मुद्रा करने से वात-पित्त-कफ इन त्रिदोषों का शमन होता है, भूख खुल कर लगती है तथा सगर्भावस्था की अवधि में तने हुए स्नायुओं को पुनर्स्वास्थ्य पाने में सहायता मिलती है। श्वेत प्रदर (ल्यूकोरिया), योनिभ्रंश (प्रोलॅप्स) व अनियंत्रित मूत्रप्रवृत्ति के उपचार में मूलबंध का अभ्यास अत्युत्तम सिद्ध हुआ है।

स्रोतः ऋषि प्रसाद मार्च 2007, पृष्ठ 30